International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 92-96

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 92-96
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-11-2016
Accepted: 24-12-2016

अमित कुमार
शोधछात्र (पीएच.डी.) संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली – 110007

Correspondence
अमित कुमार
शोधछात्र (पीएच.डी.) संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली – 110007

नाट्यशास्त्र एवं अग्निपुराण में प्रतिपादित रस समीक्षा

अमित कुमार

(क) भूमिका

काव्यशास्त्रों में रस निरूपण सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है भरतमुनि के अनुसार रस ही काव्य का प्राण तत्त्व हैं। उनका विचार है रस से अतिरिक्त कोई अर्थ काव्य में प्रवृत्त नहीं होता।[1] रस को वे आस्वाद मानते हैं।[2] लोक में प्रायः रस शब्द विभिन्न पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है जैसे– पदार्थरस, शक्तिरस, साहित्यिकरस, भक्तिरस[3] इत्यादि।

(ख) रस स्वरूप

साहित्यिक रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य भरत का कथन है कि जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों एवं द्रव्य पदार्थों के मिश्रण से भोज्य रस की निष्पत्ति होती है तथा जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों एवं औषधियों के माध्यम से षाडव रस बनते हैं उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों के संयोग से स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त करते हैं।[4]

मम्मट के अनुसार लौकिक व्यवहार में रत्यादि चित्तवृत्ति विशेष के जो कारण, कार्य तथा सहकारी कारण होते हैं वे ही काव्य या नाटक में वर्णित होकर रत्यादि स्थायीभावों के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं तथा उन विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त किया गया स्थायीभाव ही रस है।[5]

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि रस काव्य का ऐसा स्वाद है जिसका स्वरूप आनन्दमय होता है। यह रस है – क्या? इसका वर्णन अग्निपुराण में इस प्रकार मिलता है –

अक्षरं परमं ब्रह्मा सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येके चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्।।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यंजयते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्य चमत्कार रसाह्वया।।

इनके अनुसार परब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहलाता है। अहंकार से रति का जन्म होता है और जब रति इत्यादि स्थायी भाव व्यभिचारी आदिभावों से परिपुष्ट होते हैं तब श्रृंगारादि रसों की उत्पत्ति होती है।[6]

रसों को अभिमान एवं अहंकार से उत्पन्न मानना अग्निपुराणकार की नवीन कल्पना है तथा इससे यह सिद्ध होता है कि सब रसों का मूल अभिमान है। यद्यपि भोज ने भी इस तथ्य का विवेचन किया है।[7]

अग्निपुराणकार एवं भरत ने रस के बिना भाव एवं भाव के बिना रस की सत्ता स्वीकार नहीं की है –

न भावहीनोऽस्ति रसो, न रस भाववर्जितः।

अतः भाव काव्य में रस जनक होते हैं तथा रस के साथ समन्वित रहते हैं भावों का वर्णन निम्न है।

---

1 न हि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते। ना.शा. 6/ पृ. 620
2 रसः अति कः पदार्थः। उच्यते आस्वाद्यत्त्वात् ना.शा. 6/ पृ. 678
3 संस्कृत काव्य परिभाषाओं का आलोचनात्मक अध्ययन – डॉ. मृदुला जोशी, पृ. 45
4 यथा हि नानाव्यंजनौषधि ..... ना.शा. 6/ पृ. 678
5 कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
6 अग्निपुराण 39/3–5
7 रसोऽभिमान5 अहंकार श्रृंगार इति गीयते।
यौऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमनुते।। स.कठा. 5/1/1

(ग) भाव विवेचन

आचार्य भरत ने सर्वप्रथम रस सत्र में 'भाव' शब्द प्रयुक्त किया। उनके अनुसार वाणी, अंग एवं सात्त्विक अभिनय के द्वारा भावित करने वाला तत्त्व 'भाव' कहलाता है।[8]

अग्निपुराण के अनुसार जिस प्रकार बिना दान के लक्ष्मी शोभा नहीं देती, उसी प्रकार रसों के बिना कविता भी कभी शोभा नहीं देती। कवि काव्य का निर्माता होता है वह अपने भावों के अनुसार काव्य की रचना करता है। यदि कवि शृंगारी प्रकृति का होगा तो उसकी रचना भी सरस होगी। परन्तु यदि कवि नीरस होगा तो उसका काव्य भी नीरस होगा। न तो रस के बिना कोई भाव होता है और न ही भाव के बिना रस।[9] भाव पाँच प्रकार के माने गये हैं– स्थायीभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारी भाव, विभाव व अनुभाव।

(घ) स्थायीभाव –

अग्निपुराण में आठ प्रकार के स्थायीभाव हैं – रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा व विस्मय।

किन्तु स्थायीभाव की परिभाषा नहीं दी गयी हैं।

भरतमुनि ने स्थायीभाव की प्रधानता को इन शब्दों में अभिव्यंजित किया–

"यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह।।"[10]

दशरूपककार धनंजय का कथन है कि जो विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से विच्छिन्न नहीं होता अपितु अन्य भावों को भी आत्मसात् कर लेता है। वह स्थायीभाव है।[11]

वस्तुतः स्थायीभाव ही श्रेष्ठतम भाव है जिसे रसावस्था तक पहुँचने का श्रेय प्राप्त है। स्थायीभावों की संख्या विविध आचार्यों द्वारा आठ स्वीकार की गई हैं।[12]

अग्निपुराण के अनुसार इन आठ स्थायी भावों की परिभाषा इस प्रकार हैं–

1. **रति –** मनोनुकूल सुख के अनुभव का नाम रति है।[13]
2. **हास –** हर्षादि से जो मन का विकास होता है उसे 'हास' कहते हैं।[14]
3. **शोक –** प्रियवस्तु के विनाशादि से मन में होने वाली विकलता का नाम 'शोक' है।[15]
4. **क्रोध –** किसी प्रतिकूल परिस्थिति में समुत्पन्न तीक्ष्णता का नाम 'क्रोध' है।[16]
5. **उत्साह –** हृदय से उत्पन्न पौरुष को 'उत्साह' कहते हैं।[17]
6. **भय –** किसी चित्र अथवा भयंकर दृश्य को देखने से चित्त की जो व्याकुलता होती है उसे भय कहते हैं।[18]
7. **जुगुप्सा –** पदार्थों के प्रति निन्दा भाव का नाम 'जुगुप्सा' है।[19]
8. **विस्मय –** किसी अतिशय वस्तु को देखने से चित्त की विस्मृति 'विस्मय' है।[20]

भरतमुनि की परिभाषाएँ अर्थ की दृष्टि से अग्निपुराण से थोड़ी भिन्न प्रतीत होती है।

रति – रति के विषय में भरत का कथन है कि इष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा 'रति' है।

इष्टार्थ विषयप्राप्ता रीतिरित्युपजायते।

अग्निपुराण में जहाँ अनुभव को रति कहा गया है वहीं नाट्यशास्त्र में इच्छा को रति बताया गया है।

भय के विषय में भरत –

गुरुराजापराधेन रौद्राणां चापि दर्शनात्।
श्रवणादपि घोराणां भयं मोहेन जायते।[21]

अग्निपुराणकार जहाँ देखने मात्र से भय को उत्पन्न बतलाते हैं वही भरत देखने, सुनने तथा अपराध हो जाने से भी भय की उत्पत्ति मानते हैं।

यद्यपि अग्निपुराण में आठ स्थायीभाव प्रतिपादित हैं किन्तु रस नौ बताए गए हैं यहाँ पर शान्त रस का स्थायीभाव वर्णित नहीं है इससे प्रतीत होता है कि अग्निपुराणकार को नाट्य में शान्तरस की मान्यता स्वीकार नहीं है।

(ङ) सात्त्विक भाव – अग्निपुराण में आठ सात्त्विक भाव वर्णित किए गए हैं स्तम्भ, स्वेद, पुलक, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु एवं प्रलय। अग्निपुराण में इन्हें सात्त्विक भाव न कहकर स्तम्भादि भाव कहा गया है। आचार्य भरत ने भी नाट्यशास्त्र में आठ प्रकार के सात्त्विक भावों का वर्णन किया है।[22]

अग्निपुराण के अनुसार सात्त्विक भाव मनुष्य के शारीरिक भाव है तथा ये रज एवं तम से भिन्न सत्त्व गुण से उत्पन्न होते हैं।[23] भोज ने भी सत्त्व का अर्थ सत्त्व गुण युक्त मन किया हैं।[24]

इन आठ सात्त्विक भावों का वर्णन इस प्रकार हैं–

1. स्तम्भ – अग्निपुराण के अनुसार भय या रति की अधिकता के कारण निश्चेष्ट होने का नाम स्तम्भ है।[25]

भरतमुनि के अनुसार संज्ञाहीन तथा कम्पन से रहित स्थिति में मुख के शून्य तथा जड़ होने तथा शरीर के गिरने से स्तम्भ का अभिनय करना चाहिए।[26]

आचार्य भोज ने भय एवं राग को 'स्तम्भ' का कारण माना हैं।[27]

- **स्वेद –** अग्निपुराण के अनुसार श्रम, राग एवं भय के आधिक्य के कारण शरीर पर आने वाली नमी स्वेद कहलाती हैं।[28] भरत के अनुसार –

'क्रोध भयहर्ष लज्जा दुःख श्रमरोग तापघातेभ्यः।
व्यायामक्लम धर्मैः स्वेदः सम्पीडनाच्चैव।।'[29]

- **पुलकः –** हर्ष, भय आदि के कारण होने वाले शारीरिक उच्छ्वास को 'पुलक' कहते हैं।[30] भरत ने इसे रोमांच कहा हैं। उनके अनुसार –

शीतक्रोध भयश्रमरोगक्लमतापजं च वैवर्ण्यम्।
स्पर्शभय शीतहर्षात् क्रोधद्रोगाश्च रोमांचः।।[31]

भोज ने हर्ष, भय आदि के कारण रोमावलि के खड़े हो जाने को रोमांच कहाँ है।[32]

- **स्वरभेद –** हर्ष, भय आदि के कारण होने वाले कण्ठावरोध को स्वरभेद कहते हैं।[33] आचार्य भरत भय, हर्ष, क्रोधादि को स्वरभेद का कारण मानते हैं।[34]

---

8 वागङ्सत्त्वाभिनयेः स भाव इति संज्ञितः। ना.शा. 7/1

9 अ.पु. 339/9–12

10 ना.शा. 7/8

11 विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैविच्छद्यते नयः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।। दशकरूपक 4/34

12 ना.शा. 6/77, काव्यप्रकाश 4/20

13 मनोऽनुकूलेऽनुभवः सुख्स्य रतिरिष्यते। अ.पु. 339/13

14 हर्षादिभिश्च मनसो विकासो हासउच्यते। अ.पु. 330/14

15 मनोवैकलैव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः। अ.पु. 339/14

16 क्रोधस्तैक्ष्ण्यं प्रबोधश्च प्रतिकूलानुकारिणी। अ.पु. 339/15

17 पुरुषानुसमोऽप्यर्थो यः स उत्साह उच्यते। अ.पु. 339/19

18 चित्रादि दर्शनाच्चेतो वैक्लव्यं ब्रुवतेभयम्। अ.पु. 339/6

19 जगुप्सा च पदार्थानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनाम्। अ.पु. 339/16

20 विस्मयोऽतिशयेनार्थ दर्शनाच्चित्तविस्मृति। अ.पु. 339/17

21 ना.शा. 7/23

22 स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः।। ना.शा. 6/22

23 अष्टौ स्तम्भादयः सत्त्वाद्रजसस्तमसः परम्। अ.पु. 339/17

24 रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते। सं.कठा. 5/20

25 स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयरागाद्युपाहितः। अ.पु. 339/18

26 हर्ष भय शोक विस्मय विषादरोषादिसम्भवः स्तम्भः।
शीत भय हर्ष रोष स्पर्श जरारोग्जः कम्पः। ना.शा. 7/97

27 स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयराणामयादिभिः। सं.कंठा. 5/142

28 श्रम रागाद्युपेतान्तः क्षोभजन्यबपुर्जलम्। अ.पु. 339/18

29 ना.शा. 7/96

30 हर्षादिभिवहीच्छवासोऽन्तः पुलकोद्गम। अ.पु. 339/19

31 ना.शा. 7/99

32 हर्षादिजन्मवान्सङ्ग स्वरभेदो भयादिभिः। सं.कंठा. 5/143

33 हर्षादिजन्मवान्सङ्ग स्वरभेदो भयादिभिः। अ.पु. 339/19

34 ना.शा. 7/105

रसतरङ्गिणी के अनुसार गदगदता के निमित्त स्वर का बदल जाना स्वरभंग कहलाता है।[35]

- **वेपथु –** हृदय के विक्षोभस्वरूप होने वाले स्तम्भ को वेपथु कहा गया है। भरत मुनि के अनुसार वेपथु का अभिनय कंपकंपी लगने स्फुरित होने तथा थरथराने द्वारा करना चाहिए।[36]
  भोज के अनुसार भी राग, द्वेष, भय आदि से शरीर का कांपना वेपथु कहलाता है।[37]

- **वैवर्ण्य –** विषाद एवं भयादि के कारण होने वाली रूप की मलिनता 'वैवर्ण्य' है।[38] भरत के अनुसार वैवर्ण्य का अभिनय नाडियों के दबाव के कारण मुखरंग बदल जाने के द्वारा दुष्कर प्रयत्नों से करना चाहिए।[39]

- **अश्रु –** दुःख, आनन्दादि से नेत्रों में उत्पन्न या दृश्यमान जल को अश्रु कहा जाता है।[40] आचार्य भरत ने आनन्द, दुःख एवं शोक को अश्रु का कारण माना है।[41] रस तरंगिणी के अनुसार विकार से उत्पन्न नेत्र का जल अश्रु है।[42]

- **प्रलय –** इन्द्रियों की विकलता प्रलय है। भरत के अनुसार प्रलय का अभिनय चेष्टाहीन होने, श्वास के अस्पष्ट रूप से चलने से तथा भूमि पर गिर कर किया जाता है।[43]

ये आठों सात्त्विक भाव शारीरिक भाव हैं जो कि आन्तरिक परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। अग्निपुराण में वर्णित हर्ष, भय, राग, शोक, क्रोधादि आन्तरिक भाव है जिनके कारण स्तम्भादि सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं।

(च) व्यभिचारी भाव – अग्निपुराण में तैंतीस भावों की परिभाषाएँ वर्णित हैं। यद्यपि अग्निपुराण में इन्हें व्यभिचारीभाव नहीं कहा गया है तथापि इनकी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि ये आन्तरिक भाव है जिनका नामकरण अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'व्यभिचारी भाव' स्वीकार किया गया है।
भरत ने निर्वेद आदि व्यभिचारी भावों का लक्षण न कर केवल उनके विभाव, अनुभावों का विस्तृत विवेचन किया है जबकि अग्निपुराण में इन्हें लक्षण बद्ध किया गया है।

(छ) विभाव – अग्निपुराण के अनुसार रत्यादि स्थायीभाव जिसके द्वारा उत्पन्न होते हैं उसे 'विभाव' कहते हैं। विभाव दो प्रकार का होता है – आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। अर्थात् जिसके आश्रय से रत्यादि स्थायीभाव उद्बुद्ध होते हैं वह एक प्रकार का आलम्बन विभाव होता है और जिन साधनों से इत्यादिभाव उद्दीप्त होते हैं वह दूसरे प्रकार का उद्दीपन विभाव होता है।

(ज) अनुभाव – अग्निपुराण के अनुसार मन की स्मृति, वाणी की इच्छा, बुद्धि की प्रेरणा एवं शरीर के प्रयत्न से आलम्बन विभाव के परिष्कृत भावों के आरम्भ को अनुभाव कहते हैं। क्योंकि ये अनुभव किए जाते हैं इसलिए ये अनुभाव कहलाते हैं।[44] अनुभावों की चार श्रेणियाँ होती है – चित्तराम्भक, वागारम्भ, बुद्धयारम्भक व शरीरारम्भक। अग्निपुराण में दो ही श्रेणियों का वर्णन मिलता है।

मन आरम्भक – मानसिक व्यापार के आधिक्य को 'मन आरम्भ' कहते हैं, वह दो प्रकार का होता है – पुरुष संबंधी व स्त्री संबंधी।[45]

वागारम्भक – अग्निपुराण के अनुसार वाणी का कथन वागारम्भक अनुभाव होता है जो कि बारह प्रकार का है – आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुपाल, संलाप, अपलाप, सन्देश, निर्देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश एवं व्यपदेश।
भरतमुनि अनुभाव के वाचिक, आङ्गिक एवं सात्त्विक भेद मानते हैं।

> विभावेनाहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
> वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः।। ना.शा. 7/11

भानुदत्त कायिक, मानसिक, आहार्य एवं सात्त्विक – ये चार अनुभाव के भेद मानते हैं।[46]

(झ) नवरस एवं उनके भेद – रस नौ हैं – शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त।

1. **शृंगार रस –** अग्निपुराण में वर्णित शृंगार रस की उत्पत्ति परब्रह्म परमात्मा से मानी हैं। उनके अनुसार – उस परब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहलाता है उस अहंकार से अभिमान और अभिमान से रति का जन्म होता है। आचार्य भरत शृंगार रस को 'स्त्रीपुरुषहेतुक' मानते हैं। उनके अनुसार शृङ्गार रस में स्त्री पुरुष दोनों की रति का होना आवश्यक है।

आचार्य विश्वनाथ शृंगार की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हैं उनके अनुसार शृंग का अभिप्राय है – कामार्विभाव। इस प्रकार के कामोद्भेद से सम्भूत रस शृंगार है।[47]

शृंगार रस के भेद – अग्निपुराण में शृंगार रस के दो भेदों का वर्णन है – सम्भोग एवं विप्रलम्भ। पुनः इसके दो भेद है – प्रच्छन्न और प्रकाश[48]
आचार्य भरत ने शृंगार के सम्भोग एवं विप्रलम्भ दो ही भेद किए हैं।
अग्निपुराण में सम्भोग एवं विप्रलम्भ शृंगार के लक्षण नहीं दिए हैं। अपितु विप्रलम्भ शृंगार के चार भेदों का उल्लेख मात्र किया गया हैं। पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण – ये विप्रलम्भ के चार भेद हैं तथा इन चारों से भिन्न होने वाला संभोग शृंगार कहा गया है।[49] सामान्यतः सम्भोग शृंगार नायक–नायिका के परस्पर मिलन और विप्रलम्भ शृंगार से तात्पर्य 'मिलन के अभाव' को कहते हैं।
अग्निपुराण के समान ही आचार्य रुद्रट एवं विश्वनाथ ने विप्रलम्भ शृंगार के चार भेदों को ही माना है। परन्तु मम्मट पाँच प्रकार के विप्रलम्भ शृंगार को मानते हैं जो इस प्रकार है प्रवास, अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या व श्राप।[50]
अग्निपुराण के अनुसार विप्रलम्भ के चारों भेदों में संभोग शृंगार विद्यमान रहता है किन्तु वह विप्रलम्भ का अतिक्रमण नहीं करता। शृंगार का संबंध स्त्री पुरुष से है। इसका निर्वाह रत्यादि आदि स्थायी भावों के द्वारा होता है। इस रस में समस्त सात्त्विकों का समावेश रहता है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष तथा आलम्बनादि के द्वारा शृंगार निरन्तर बढ़ता है। इसके मुख्य रूप से दो स्वरूप होते हैं – वाक् क्रियात्मक एवं नेपथ्य क्रियात्मक।
इस प्रकार चारों पुरुषार्थों एवं आलम्बनादि के द्वारा शृंगार प्रवाह को निरन्तर गतिमान बताया गया है।

2. **हास्य रस –** अग्निपुराण में हास्य रस का वर्णन न करते हुए केवल उसके भेदों का ही वर्णन प्राप्त होता है। इसमे स्मित, हसित, विहसित एवं अपहसित नामक चार प्रकार के हास्य भेदों का वर्णन प्राप्त होता है।

अग्निपुराण के अनुसार हास्य रस के भेदों का वर्णन इस प्रकार है –
आचार्य भरत ने हास्य रस के छः भेद बताए हैं –

---

35 गद्गदत्व प्रयोजकी रक्त स्वर स्वभाव वैजात्यं स्वरभङ्ग। रसतरङ्गिी 4, पृ. 36

36 ना.शा. 7/105

37 रागशेषभयादिभ्यः कम्पो शात्रस्य वेपथुः।

38 वैवर्ण्य च विषादिजन्मा कान्ति विपर्ययः। अ.पु. 339/20

39 ना.शा. 7/106

40 दुखानन्दादिज नेगजलमन्तु च विश्रुतम्। अ.पु. 339/21

41 ना.शा. 7/68

42 रसतरङ्गिणी 4, पृ. 38

43 ना.शा. 7/108

44 आनम्बन विभावस्य भावैरुद्रबुद्ध संस्कृतैः।
मनोवाग्बुद्धिवपुषां स्मृतीच्छाद्वेषयत्नतः।। अ.पु. 339/44–45

45 मनोव्यापारभुयिष्ठो मन आरम्भ उच्यते।
द्विविधः पौरुषः स्त्रेण ईदृशोऽपि प्रसिद्धयति।। अ.पु. 339/46

46 रसतरङ्गिणी 3, पृ. 24

47 शृंगं हि मन्मथोदभेदस्तदागमन हेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।। सा.द. 3/183

48 सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृंङ्गारो द्विविधः स्मृतः।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च तावपि द्विविधःपुनः। अ.पु. 343/4

49 विप्रलम्भाभिधानो यः शृंगार स चतुर्विधः।
पूर्वानुराग मानाख्यः प्रवासकरुणात्मकः।। अ.पु. 342/5–6

50 अपरस्तु अभिलाष विरहेर्ष्या प्रवासशापहेतुक इति पंचविधः। काव्यप्रकाश 4, पृ. 123

स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितम् चापहसितमति हसितम्।
द्वौ द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्याधमप्रकृतौ।।

3. करुण रस – अग्निपुराण के अनुसार करुण रस त्रिविध हैं – धर्मोपघात, वित्तनाश और शोकजन्य। इनमें धर्म की हानि से जो मनोवैकलव्य होता है, उससे जो करुण रस उत्पन्न होता है वह धर्मोपघातजन्य करुण रस है। वित्तनाश जनित करुण रस से भी विकलता होती है।
आचार्य भरत शोक को करुण रस का स्थायीभाव मानते हैं। इनके मतानुसार करुण रस के द्विविध कारण है – इष्टजनवधदर्शनाद् और इष्टजनविप्रिय वचनश्रवण[51] आचार्य रुद्रट भी शोक को ही करुण रस का स्थायी भाव मानते हैं।

4. रौद्र रस – अग्निपुराण में रौद्र रस के तीन भेदों का वर्णन किया है – आङ्गिक, नेपथ्य एवं वाक्य (वाचिक)। इसमें अङ्ग के द्वारा, वेश–भूषा के द्वारा एवं वाणी के द्वारा रौद्र रस का प्रदर्शन किया जाता है। इसका स्थायीभाव क्रोध है तथा रोमांच, कम्प एवं स्वेद इसके संचारीभाव है।

5. वीररस – अग्निपुराण में वीर रस के तीन भेद उल्लिखित है – दानवीर धर्मवीर एवं युद्धवीर। इस रस की अभिव्यक्ति उत्साह द्वारा होती है।[52]
आचार्य भरत ने वीर रस के चार भेदों का वर्णन किया है – दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर एवं दयावीर।
रुद्रट के मतानुसार भी वीर रस उत्साह युक्त होता है। युद्ध, धर्म एवं दान विषयों में इसका प्रयोग होता है अतः यह तीन प्रकार है।

6. शान्त रस – अग्निपुराण शान्त रस को मानता है किन्तु नाट्य में उसका प्रयोग निषेध करता है।
आचार्य भरत शान्त को 'मोक्ष प्रवर्तक' मानते हैं। यह शान्त रस तत्त्वज्ञान, वैराग्य, और मनोभावों की शुद्धि आदि विभावों से उद्बुद्ध होता है।[53]
विद्वान् शान्त रस के विधान को स्वीकार नहीं करते। किन्तु आचार्य अभिनवगुप्त मतों का निराकरण करते हुए शान्त को रस की पदवी पर प्रतिष्ठित करते हैं।
भयानक, वीभत्स एवं अद्भुत दोनों काव्यग्रन्थों में समान प्रतिपादित किये गये हैं। अतः उनका वर्णन नहीं किया गया है।

उपसंहार

भारतीय काव्यशास्त्र का मूलस्रोत आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र रसवादी ग्रन्थ है तथा अग्निपुराण अलंकारवादी है। रस स्वरूप विवेचन में दोनों ग्रन्थों में कुछ समानतायें एवं असमानतायें हैं जिनकी इस शोधपत्र में तुलना की जाएगी –

समानतायें

1. नाट्यशास्त्र भावों के बिना रस एवं रस बिना भावों की सत्ता नहीं मानता है।[54] तथैव अग्निपुराण भी रस एवं भाव को एक दूसरे के आश्रित मानता है।[55]

2. नाट्यशास्त्र एवं अग्निपुराण में सात्त्विक भाव, व्यभिचारीभाव, स्थायिभाव की परिभाषा शब्द से ही नहीं अपितु अर्थ से भी एक समान है।[56]

असमानतायें

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र एवं अग्निपुराण के रस प्रकरण में कुछ असमानतायें भी है। यथा –

1. रस के सम्बन्ध में आचार्य भरत योगदर्शन का आलम्बन करते हैं। योग दर्शन की चार वृत्तियाँ मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से मन विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप नामक चित्तदशाओं में परिणत होकर क्रमशः चार रसों को उत्पन्न करता है।

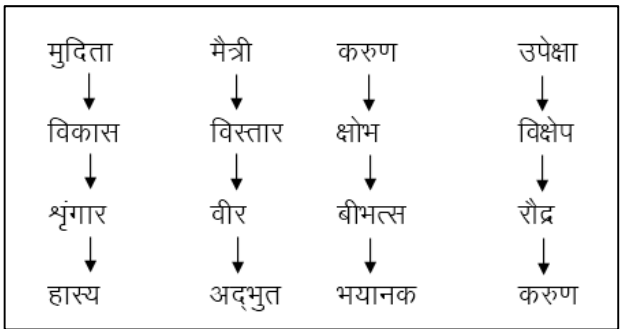

किया गया है। किन्तु इसका आधार वेदान्त दर्शन है। सृष्टिनिर्माण प्रक्रिया सदृश रस को परब्रह्म से उत्पन्न माना है जैसे चैतन्यरूप परब्रह्म का गुणत्रय रूप प्रथम विकार महत्त्व है। महत्तत्व से अहंकार की अनुभूति होती है। महत्तत्व के समान ही यह अलंकार भी त्रिगुणात्मक है। रज एवं तम के संस्पर्श से रहित जब सत्त्व अहंकार का उद्रेक होता है तब सहृदयों के द्वारा आनन्द की अनुभूति होती है। यही अनुभूति रस हैं।[57]
परब्रह्म → महत्तत्व → अहंकार (त्रिगुणात्मक) → सत्त्व अहंकार → रस।।

2. नाट्यशास्त्र एवं अग्निपुराण में आठ स्थायिभाव माने गये हैं। जिसमें भय और रति स्थायिभावों को छोड़कर शेष के लक्षण समान है। रति स्थायीभाव के प्रसंग में अग्निपुराण में 'सुख के अनुभव का नाम रति' प्रतिपादित किया है परन्तु भरतमुनि का रति के विषय में कथन है कि 'इष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा रति' है। इसी प्रकार भय के विषय में अग्निपुराण में 'भयंकर दृश्य को देखने से चित्त की व्याकुलता को भय प्रतिपादित किया है। परन्तु भरतमुनि देखने व सुनने तथा अपराध हो जाने से भी भय की उत्पत्ति मानते हैं।'
3. अग्निपुराण का रस विवेचन एक और दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अग्निपुराण के अनुसार परब्रह्म से सर्वप्रथम शृंगार की उत्पत्ति होती है और उसके द्वारा अन्य रसों का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् सभी रसों का मूल कारण शृंगार है। इसके विपरीत भरतमुनि ने शृंगार से केवल हास्य का विकास माना है। अन्य रसों का नहीं।[58]
आचार्य भरत तथा अग्निपुराण के काल में बहुत अन्तर है। इस कारण रसविवेचन में एक अन्तर स्पष्ट हैं। भरतमुनि का रसविवेचन प्राचीन तथा अन्य काव्यशास्त्रों का उपजीव्य हैं। दूसरी तरफ अग्निपुराण का रसविवेचन नवीन एवं अन्य ग्रन्थों से उद्धृत प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काणे, पी.वी., 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966.
2. डे, सुशील कुमार, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, बिहार, 1973.
3. कीथ, ए.बी., 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988.
4. उपाध्याय, बलदेव, 'भारतीय साहित्य–शास्त्र', प्रसाद परिषद काशी, द्वितीय संस्करण, 2012.
5. सैनी, सुनीता, 'अग्निपुराण में विविध विधाएँ', अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, 2004.
6. कुमार, कृष्ण, 'अलंकार शास्त्र का इतिहास', साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975.
7. गैरोला, वाचस्पति, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991.
8. पोद्दार, सेठ कन्हैयालाल, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1997.

---

51 इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचनस्य संश्रयाद्वापि। ना.शा. 6/112

52 दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रयम्।
वीरस्तस्य च निष्पत्तिहेतुरुत्साह इत्यते।। अ.पु. 342/14

53 ना.शा. 6/216

54 न भाव हीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः। अ.पु. 4/7

55 यदा विवेक पैराग्यान्न व्यवस्यति कम्मसु। तदा निर्वृतिः शान्तः स्यात्तस्य निर्वतकः शमः। अ.पु. 4/24

56 शृंगारोंरौद्रो वीर बीभत्स इति। ना.शा. 6/39

57 अक्षरं परमं ब्रह्म .....। आद्यस्तस्य विकारो यः स महानिति।। अ.पु. 4/1,2,3

58 रसादिविनियोगऽथ कथ्यते ह्यभिमानतः।
तमन्तरेण सर्व्वेषामपार्थव स्वतन्त्रता।। अ.पु. 4/9

9. उपाध्याय, बलदेव, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', शारदा मन्दिर, बनारस, 1987.
10. नागेन्द्र, 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973.
11. अवस्थी, श्री एवं पाण्डे, विश्वनाथ, 'पुराण पर्यालोचन', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1975.
12. उपाध्याय, बलदेव, 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास', उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1977.